खिड़कियों से झांकतीं आंखें

सुधा ओम ढींगरा

सारा दिन मुझे महसूस होता रहा जैसे कई आंखें मेरा पीछा कर रही हैं। मेरी हर हरकत देख रही हैं। पहले दिन से ही मेरे साथ ऐसा हो रहा है। अभी मैं अस्पताल से घर जा रहा हूँ, ढेरों आंखें मेरा पीछा करती मुझे लग रही हैं। यह सब क्या हो रहा है, मैं समझ नहीं पा रहा। क्या मैं मानसिक संतुलन खो रहा हूँ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। शायद यह मेरा भ्रम है। इस विचार को छिटक कर मैं सामने की सड़क पार करता हूँ। यह क्या...? आंखें फिर मेरा पीछा करने लगीं! मुझे पूरी तरह से लगने लगा है, उन आंखों ने मेरे बदन पर मानों कई मन भार डाल दिया है, क्योंकि शरीर को चलाना मुश्किल हो रहा है।

सड़क पार करते ही मैं रुक गया हूँ। मुझे कदम उठाने कठिन हो रहे हैं। लंबी सांस भीतर खींच कर मैं बाहर छोड़ता हूँ।

जब से इस शहर में आया हूँ, कुछ ठीक नहीं लग रहा। अजीब सी घुटन और उदासी वातावरण में महसूस कर रहा हूँ। वातावरण में कुछ और भी है, जो मेरी पकड़ में नहीं आ रहा। पिछले साढ़े तीन साल न्यूयार्क में रहा हूँ, हाल ही में इस शहर के हॉस्पिटल में डॉक्टर बन कर आया हूँ। पहले तो सोचा, शायद बड़े शहर से छोटे शहर में आने के उपरांत ऐसा लग रहा है, बात यह भी नहीं। हालांकि आते ही मैं निराश जरूर हुआ, छोटा शहर सोच कर यहाँ आया था, पर निकला यह कस्बा। शहर की सहूलियतों से लैस, छोटी सी जगह। मानसिकता भी मुझे कस्बे जैसी लगने लगी है। इस कस्बे को देख कर एक बात पक्की तरह से मैं कह सकता हूँ, अमेरिका के बारे में जो सर्वे पिछले दिनों छपा था, बिलकुल सही है। अमेरिका में युवाओं की संख्या बहुत कम हो रही है और बड़े-बूढ़े बढ़ रहे हैं। जबकि विश्व में भारत एक युवा देश माना जाने लगा है। यहाँ एक भी युवा चेहरा मुझे नजर नहीं आया, चाहे वह सड़क हो या हॉस्पिटल। कोई युवा डॉक्टर मुझे अस्पताल में नहीं मिला, सिवाय एक नर्स के। वह भी मेरी तरह नई आई है इस शहर में, नहीं, नहीं इस कस्बे में। सच कहूँ तो मैं यह नहीं सोच रहा कि यहाँ युवा होंगे ही नहीं, होंगे, जरूर होंगे, पर अधिकतर मुझे बड़े-बूढ़े ही नजर आए हैं।

काश! मैंने इस कस्बे के बारे में जानकारी ले ली होती। पर उससे क्या होता? मेरे पास विकल्प ही कहाँ था? मैं खुद ही अपनी सोच पर झुंझला गया। तीन साल की रेजीडेंसी में मैं यह जरूर समझ गया कि भारत या पाकिस्तान से पढ़ कर आए डॉक्टरों को नौकरी ग्रामीण या दूर दराज के छोटे-छोटे शहरों या कस्बों में मिलती है, जहाँ स्थानीय डॉक्टर जाना नहीं चाहते। हाँ, पैसा बहुत मिलता है। भारतीय डॉक्टर खुशी से स्वीकार कर लेते हैं, क्योंकि उन्हें पैसा चाहिए होता है। मुझे भी तो पैसा चाहिए। ढेर सारा पैसा। सोचने-समझने के लिए था ही क्या! कहीं से भी नौकरी का प्रस्ताव नहीं आया था। असुरक्षा की भावना घर कर रही थी, गर नौकरी नहीं मिली तो क्या होगा? इसी विचार ने मुझे बेचैन किया हुआ था। कड़ी मेहनत से मैं यहाँ तक पहुँचा हूँ। यही सोच कर परेशान रहने लगा था। कोई नहीं जानता पर मैं तो जानता हूँ, कर्जा लेकर मैं इस देश में आया था। तीन साल की रेजीडेंसी में मैंने उस कर्जे को तो उतार दिया पर खर्चों की एक लंबी लिस्ट बार-बार मुझे अपने होने का अहसास दिलवाती रहती है।

बस ज्यों ही यहाँ के हॉस्पिटल से बुलावा आया, भाग कर मैं यहाँ आ गया। घर के हालात, माँ-पिता जी, चार बहनें और दो छोटे भाइयों के चेहरे आंखों के सामने घूमते रहते हैं। बहन-भाई पढ़ रहे हैं। पिता जी सरकारी स्कूल में शिक्षक हैं, इसी वर्ष रिटायर हो रहे हैं, पेंशन में गुजारा मुश्किल होगा। सिर पर छत नहीं। बहनों की शादियाँ भी करनी हैं। मजबूरी की लिस्ट मेरी आंखों के सामने घूमती रहती है।

पहले ही दिन बूढ़े डॉ. डेविड स्मिथ ने मेरा स्वागत करते हुए जो कहा उसका मतलब था- 'यंग मैन, तुम इस छोटे शहर में बूढ़े होने के लिए क्यों आ गए? बड़े शहर में जाते जहाँ हमेशा जवां रहते।' क्या कहता उन्हें! किसी बड़े शहर ने बुलाया नहीं। कस्बे ने पुकारा तो चला आया। मैं अपने हालात के बारे में सोचते हुए उनकी इस बात पर बस मुस्करा दिया।

'एनी वे, दिस इज़ योर चोईस। वेलकम टू दिस हॉस्पिटल।' डॉ. डेविड स्मिथ ने अंततः हाथ मिला कर बहुत आत्मीयता से मुझे आगोश में लिया।

अमेरिका नहीं चाहता कि मैं यंग रहूँ। मेरी नियति में भी शायद यही लिखा है, जो मुझे सिर्फ इसी शहर से नौकरी का स्वीकृति-पत्र मिला। सोच का चमगादड़ फिर से मेरे साथ चिपक गया।

जब से मैं इस शहर में आया हूँ, सोच ही तो रहा हूँ। मेरे दिमाग को चैन नहीं आ रहा। तनाव में रह रहा हूँ, पता नहीं क्यों रह-रह कर अपने अतीत में झाँकने लगता हूँ। क्या फितूर आया था मुझे, जो अच्छी-भली नौकरी छोड़ दी थी मैंने। यहाँ देश और परिवार से दूर अकेला संघर्ष करने चला आया। घर के हालात ऐसे हैं कि विदेश जाकर ही उन्हें संवारना, मात्र एक विकल्प लगा था मुझे उस समय। सभी तो ऐसा नहीं करते। मेरे जैसे बहुत से मजबूर लोग देश में और भी हैं। शायद मैं ही विदेश आना चाहता था। दरअसल मेरा कसूर भी नहीं, मेरी मेहनत रंग लाती गई। मुझे अवसर भी मिलते गए। सबसे बढ़ कर किस्मत ने साथ दिया जो आज मैं विदेश में डॉक्टर बन गया हूँ। कभी-कभी खुद को समझाने की कोशिश भी करता हूँ, मेरी विवशता थी, जिसे मैं फितूर समझता रहता हूँ। क्या यह देश छोड़ कर विदेश में रहने आने के द्वंद्व से उत्पन्न हुई कुंठा का परिणाम तो नहीं? अरे अब दिमाग में यह क्या प्रश्न पैदा हो गया? आजकल बेतुके प्रश्न सिर उठाते रहते हैं। सारे काम करता हुआ मैं इन प्रश्नों को सुलझाता रहता हूँ। मैं डॉक्टर हूँ, जानता हूँ ऐसा करना गलत है, फिर भी ऐसी हरकत मैं कैसे कर सकता हूँ! पर यहाँ आकर मैं ऐसा कर रहा हूँ। मेरे दिमाग में हर समय कुछ चलता रहता है। देश को तो मैंने साढ़े तीन साल पहले छोड़ दिया था, जब न्यूयॉर्क के एक घटिया से होटल में रह कर यू एस एम एल ई के स्टेप तीन की परीक्षा दी थी। वे क्षण कितने विस्मयकारी थे, जब मुझे पता चला कि मैं उस परीक्षा में पास हो गया हूँ और न्यूयार्क

सुधा ओम ढींगरा

अद्यतन कहानी संग्रह 'वसूली', कविता संग्रह 'सफ़र यादों का'। संप्रति 'विभोम-स्वर' की संपादक और ढींगरा फाउंडेशन की उपाध्यक्ष।

के ही सिटी हॉस्पिटल में मुझे रेज़ीडेंसी भी मिल गई। साढ़े तीन साल वहाँ रह कर अब मैं इस शहर में डॉक्टर बन कर आया हूँ। दिमाग में विचारों का रेला-पेला लगा हुआ है।

मैंने आंखें मूंद कर लंबी-लंबी साँसें लीं, सोच के चक्रव्यूह से मैं इसी तरह बाहर निकलता हूँ। कुछ क्षण रुक कर अपार्टमेंट की ओर चल पड़ा हूँ। डॉ. डेविड स्मिथ की बात कानों में गूँजने लगी- 'व्हाई यू हैव कम हेयर टु गेट गोल्ड इन दिस स्माल ओल्ड सिटी एंड ओल्ड हॉस्पिटल।' सही ही तो है, मैं स्वयं चला आया विदेश में हर कीमत अदा करने। अपने देश और उससे जुड़ीं स्मृतियाँ ही तो हैं अब मेरे पास। धीरे-धीरे वे भी धुंधला जाएंगी, मेरी याददाश्त के साथ। क्या रहेगा मेरे पास? इस सोच ने मेरे बदन में झुरझुरी पैदा कर दी।

अपने देश से मैंने एम बी बी एस किया और दिल्ली के सफदरजंग हॉस्पिटल में डॉक्टर की नौकरी भी ले ली। क्या दिन थे! चारों ओर खुशी की लहर दौड़ा करती थी। आसमान की बुलंदियाँ छूने को मन चाहा करता था, पर जीवन की कठोर सच्चाइयाँ और घर की परिस्थितियाँ शीघ्र ही मुझे जमीन पर ले आईं। कुछ ही दिनों में पता चल गया कि इस कमाई से परिवार की जरूरतें पूरी नहीं हो सकतीं। माँ-पिता जी अपने सब बच्चों को बहुत पढ़ाना चाहते हैं। पढ़ाई उनकी प्राथमिकता है। भरा-पूरा परिवार और एक सरकारी स्कूल के अध्यापक का वेतन! माँ बड़ी जुगत से सबके खर्चे पूरे करती। माँ से ही तो मैंने हिसाब-किताब करना और बजट में रहना सीखा। पढ़ने के लिए सब भाई-बहनों को बाहर छोटा-मोटा काम करना पड़ता। मुझे छात्रवृत्ति मिलती रही और मैं पढ़ता गया और एक दिन मौलाना आजाद मेडिकल कॉलेज से डॉक्टरी की डिग्री मिल गई और मैं डॉक्टर बन गया। कुछ महीने ही मैंने हॉस्पिटल में नौकरी की थी। उस समय को मैं कैसे भूल सकता हूँ, उस समय के हर पल की याद ताजा है। वहाँ बहुत से डॉक्टर अमेरिका जाने की तैयारी कर रहे थे। उन्हीं से तो पता चला कि अमेरिका में डॉक्टर बनने के लिए यू एस एम एल ई की परीक्षा पास करनी पड़ती है। तभी मुझे जानकारी हुई कि यह वह परीक्षा है जो हर विदेशी डॉक्टर को अमेरिका में डॉक्टर बनने के लिए देनी पड़ती है। यू सी एम एल ई के तीन स्टेप होते हैं। मुझे तो यह भी नहीं पता था कि दो स्टेप अपने देश में दिए जा सकते हैं और तीसरा इसी देश में आकर देना पड़ता है। फिर किसी अस्पताल में रेजीडेंसी मिलती है। तीन साल रेजीडेंसी करने के बाद यहाँ प्रैक्टिस करने के लिए बोर्ड की परीक्षा पास करनी पड़ती है। इतनी परीक्षाओं के बाद अमेरिका में एक डॉक्टर बनता है। दूर की नहीं सोची थी, मैंने तो बस इतना सोचा, चलो, किस्मत को आजमाया जाए! किस्मत ने साथ दिया। दिल्ली में ही मैंने यू एस एम एल ई के दो स्टेप पार कर लिए और तीसरा इस देश में। यह सब आसान नहीं था, पर मेरी कर्मठता और मेरा अपने प्रति तथा उस शक्ति के प्रति अथाह विश्वास मेरे साथ था। इस बात में भी यकीन करता हूँ कि इस देश में आना लिखा था तभी मुझे रास्ते मिलते गए।

'क्या मैं भाग्यवादी हूँ?' कई बार अपने से यह पूछ चुका हूँ।

'नहीं, मैं भाग्यवादी नहीं, कर्मयोगी हूँ पर नियति का जीवन पर प्रभाव पड़ता है और उसके महत्व से इन्कार नहीं करता।' हर बार मैं अपने-आपको इस तर्क से समझा चुका हूँ।

ओफ्फ ये आंखें मुझे छोड़ नहीं रहीं, फिर मेरा पीछा करती लग रही हैं। मैं अपार्टमेंट जाने की

'डॉक्टर खान, यह नहीं कि मुझे बड़े-बूढ़े पसंद नहीं। मैं बुजुर्गों को बहुत पसंद करता हूँ, उनकी बेहद इज्जत करता हूँ। वे अनुभवों और किस्सों का खजाना होते हैं, पर जो अनुभव मुझे हो रहे हैं, उनसे मैं डर गया हूँ।' मैंने डॉ. खान को कहा था।

'कैसे अनुभव?' डॉ. खान ने पूछा!

मैंने डॉ. खान को पूरा किस्सा बताया- 'पहले दिन ही जब मैं यहाँ आया, घर का दरवाजा खोलते ही, आस-पास के घरों की खिड़कियों से कुछ चेहरे एकदम झांकते हुए मुझे घूरने लगे थे। किसी खिड़की से एक, किसी खिड़की से दो। अगर चेहरा होता तो शायद अजीब नहीं लगता, पर यहाँ तो दो या चार आंखें ही दिख रही थीं मुझे। शून्य में टंगी, निर्जीव स्थिर-सी आंखें। घर के अंदर गया तो ऐसा लगा कि जैसे मेरी पीठ पर वे आंखें चिपक गई हैं। इस खयाल को झाड़ कर मैंने अपने घर की खिड़की से बाहर देखा, वे आंखें उसी तरह मुझे घूरती मिलीं। मेरे बदन को चीरती हुई-सी। मैं बार-बार यह सब सोचता और बेचैन होता रहा। रात मैंने किसी तरह काटी, दूसरे दिन सुबह फिर खिड़की के पर्दे खोलते ही वे आंखें अपनी-अपनी खिड़की से मेरी ओर झांक रही थीं, जैसे सारी रात वहीं चिपकी रही थीं। यह देख कर मुझे बड़ी घबराहट हुई। फटाफट मैंने खिड़की का पर्दा बंद किया। सिर्फ इतना ही नहीं, मैं अस्पताल जाने के लिए बाहर निकला, न चाहते हुए भी उन खिड़कियों की ओर मेरी नजर उठ गई, कई और आंखें अलग-अलग खिड़कियों से मुझे देखती नजर आईं। ज्योंही दरवाजा बंद करके मुड़ा वे आंखें मुझे मेरी पीठ से चिपकी महसूस होने लगीं।'

इतना सुनते ही डॉ. खान जोर से हँस पड़े, 'यंग मैन, इन आंखों से डरने की जरूरत नहीं, इनको दोस्ती का चश्मा चाहिए, पहना दो, चिपकना बंद कर देंगीं।'

पर मैं तो यहाँ से दूसरी जगह जाने का मन बना चुका हूँ।

मेरे पैर कदम दर कदम सड़क नाप रहे हैं और दिमाग एक के बाद दूसरे, दूसरे के बाद तीसरे विचार से उलझ रहा है और मैं कभी अतीत के गलियारे का चक्कर लगाता हूँ, तो कभी वर्तमान में लौट आता हूँ। सोच-विचार के इसी चक्र में चलता हुआ मैं अपार्टमेंट के सामने आ खड़ा हुआ हूँ। अस्पताल से यहाँ तक दिमाग और कदम कितना कुछ नाप गए मुझे पता ही नहीं चला।

ये क्या? मेरे दरवाजे के आगे तीन प्लास्टिक बैग और उनमें प्लास्टिक के डिब्बे पड़े हैं। मैंने दरवाजा खोलने से पहले एक प्लास्टिक के बैग को उठाया। उस पर एक कागज चिपका है, जिस पर लिखा है, 'वेलकम टू आवर नेवरहुड। इट्स ए फ्रूट केक। टॉम एन्ड सू, अपार्टमेंट नंबर 1130' यानी ठीक उसके सामने वाला।

मैंने दूसरा बैग उठाया। उस पर जो कागज़ लगा है, उस पर हिंदी में लिखा हुआ है- 'तुम हमारे बेटे जैसे हो। एक बैग में रसम वड़ा है और दूसरे में सांभर इडली। तुम्हारी छुट्टी वाले दिन तुम्हें डोसा खिलाऊंगी। खाना नहीं बनाना। तुम्हें रोज खाना मिल जाएगा। मीना और शंकर रेड्डी, अपार्टमेंट नंबर 1132, यानी सामने वाले के साथ वाला। यहाँ के नंबर भी अजीब हैं-1131, 1133 दूसरी तरफ हैं।

बड़ी हैरानी हुई, यह सब पढ़ कर, मेरी आंखों में मोती उभर आए। मैं उन्हें अपनी आंखों में ही सोख लेता हूँ। आंखों से कुछ भी निकले, मुझे गवारा नहीं। पीछे घूम कर मैंने खिड़कियों की ओर देखा, कई आंखें मुझे देख रही हैं। मैंने हाथ हिला कर उन्हें कमरों से बाहर आने का इशारा किया। मैं जान गया कि सहारे को तलाशती ये आंखें किसी भी अजनबी में अपनापन ढूंढने लगती हैं। मैंने अपना दरवाजा खोला और तीनों बैग अंदर रखे और फिर बाहर निकल आया। सामने ही मुझे टॉम और सू खड़े मिले। उन्होंने स्वयं को मिलवाया। तकरीबन अस्सी साल के होंगे। मीना और शंकर रेड्डी भी तकरीबन उसी उम्र के होंगे। उन्होंने हाथ मिलाते ही कहा, 'मैं तुम्हारी तरह का ही था, जब यहाँ इसी

'डॉक्टर खान, यह नहीं कि मुझे बड़े-बूढ़े पसंद नहीं। मैं बुजुर्गों को बहुत पसंद करता हूँ, उनकी बेहद इज्जत करता हूँ। वे अनुभवों और किस्सों का खजाना होते हैं, पर जो अनुभव मुझे हो रहे हैं, उनसे मैं डर गया हूँ।' मैंने डॉ. खान को कहा था।

'कैसे अनुभव?' डॉ. खान ने पूछा!

मैंने डॉ. खान को पूरा किस्सा बताया- 'पहले दिन ही जब मैं यहाँ आया, घर का दरवाजा खोलते ही, आस-पास के घरों की खिड़कियों से कुछ चेहरे एकदम झांकते हुए मुझे घूरने लगे थे। किसी खिड़की से एक, किसी खिड़की से दो। अगर चेहरा होता तो शायद अजीब नहीं लगता, पर यहाँ तो दो या चार आंखें ही दिख रही थीं मुझे। शून्य में टंगी, निर्जीव स्थिर-सी आंखें। घर के अंदर गया तो ऐसा लगा कि जैसे मेरी पीठ पर वे आंखें चिपक गई हैं। इस खयाल को झाड़ कर मैंने अपने घर की खिड़की से बाहर देखा, वे आंखें उसी तरह मुझे घूरती मिलीं। मेरे बदन को चीरती हुई-सी। मैं बार-बार यह सब सोचता और बेचैन होता रहा। रात मैंने किसी तरह काटी, दूसरे दिन सुबह फिर खिड़की के पर्दे खोलते ही वे आंखें अपनी-अपनी खिड़की से मेरी ओर झांक रही थीं, जैसे सारी रात वहीं चिपकी रही थीं। यह देख कर मुझे बड़ी घबराहट हुई। फटाफट मैंने खिड़की का पर्दा बंद किया। सिर्फ इतना ही नहीं, मैं अस्पताल जाने के लिए बाहर निकला, न चाहते हुए भी उन खिड़कियों की ओर मेरी नजर उठ गई, कई और आंखें अलग-अलग खिड़कियों से मुझे देखती नजर आईं। ज्योंही दरवाजा बंद करके मुड़ा वे आंखें मुझे मेरी पीठ से चिपकी महसूस होने लगीं।'

इतना सुनते ही डॉ. खान जोर से हँस पड़े, 'यंग मैन, इन आंखों से डरने की जरूरत नहीं, इनको दोस्ती का चश्मा चाहिए, पहना दो, चिपकना बंद कर देंगीं।'

पर मैं तो यहाँ से दूसरी जगह जाने का मन बना चुका हूँ।

मेरे पैर कदम दर कदम सड़क नाप रहे हैं और दिमाग एक के बाद दूसरे, दूसरे के बाद तीसरे विचार से उलझ रहा है और मैं कभी अतीत के गलियारे का चक्कर लगाता हूँ, तो कभी वर्तमान में लौट आता हूँ। सोच-विचार के इसी चक्र में चलता हुआ मैं अपार्टमेंट के सामने आ खड़ा हुआ हूँ। अस्पताल से यहाँ तक दिमाग और कदम कितना कुछ नाप गए मुझे पता ही नहीं चला।

ये क्या? मेरे दरवाजे के आगे तीन प्लास्टिक बैग और उनमें प्लास्टिक के डिब्बे पड़े हैं। मैंने दरवाजा खोलने से पहले एक प्लास्टिक के बैग को उठाया। उस पर एक कागज चिपका है, जिस पर लिखा है, 'वेलकम टू आवर नेवरहुड। इट्स ए फ्रूट केक। टॉम एन्ड सू, अपार्टमेंट नंबर 1130' यानी ठीक उसके सामने वाला।

मैंने दूसरा बैग उठाया। उस पर जो कागज़ लगा है, उस पर हिंदी में लिखा हुआ है- 'तुम हमारे बेटे जैसे हो। एक बैग में रसम वड़ा है और दूसरे में सांभर इडली। तुम्हारी छुट्टी वाले दिन तुम्हें डोसा खिलाऊंगी। खाना नहीं बनाना। तुम्हें रोज खाना मिल जाएगा। मीना और शंकर रेड्डी, अपार्टमेंट नंबर 1132, यानी सामने वाले के साथ वाला। यहाँ के नंबर भी अजीब हैं-1131, 1133 दूसरी तरफ हैं।

बड़ी हैरानी हुई, यह सब पढ़ कर, मेरी आंखों में मोती उभर आए। मैं उन्हें अपनी आंखों में ही सोख लेता हूँ। आंखों से कुछ भी निकले, मुझे गवारा नहीं। पीछे घूम कर मैंने खिड़कियों की ओर देखा, कई आंखें मुझे देख रही हैं। मैंने हाथ हिला कर उन्हें कमरों से बाहर आने का इशारा किया। मैं जान गया कि सहारे को तलाशती ये आंखें किसी भी अजनबी में अपनापन ढूंढने लगती हैं। मैंने अपना दरवाजा खोला और तीनों बैग अंदर रखे और फिर बाहर निकल आया। सामने ही मुझे टॉम और सू खड़े मिले। उन्होंने स्वयं को मिलवाया। तकरीबन अस्सी साल के होंगे। मीना और शंकर रेड्डी भी तकरीबन उसी उम्र के होंगे। उन्होंने हाथ मिलाते ही कहा, 'मैं तुम्हारी तरह का ही था, जब यहाँ इसी

अस्पताल में आया। मीना भी इसी अस्पताल में डॉक्टर थी। उस समय का अस्पताल एक गांव का अस्पताल था, अब तो यह शहर का बन गया है। यहाँ रहने वाले मित्र अधिकतर मेरे पेशेंट थे।' वे बिना रुके ही बोलते गए, जैसे किसी से बात करने को तरस रहे हों। सामने के दूसरे अपार्टमेंटों से स्टिक लेकर चलते हुए रिक और रकैल आए। डॉ. रेड्डी ने बताया कि दोनों 95 वर्ष के हैं पर अभी भी खुद अपने सारे काम करते हैं। ऐमा और पीटर, इसाबेल और डिक भी आए, मिले।

'तुम खाना खाओ, फिर मिलेंगे', कह कर सब चले गए पर डॉ. रेड्डी वहीं खड़े हैं, मैं समझ गया, क्यों खड़े हैं? मैंने उन्हें अपने अपार्टमेंट में आने के लिए कहा, 'चलिए, मेरे यहाँ बैठ कर इत्मीनान से बातें करते हैं।'

'मैं तुम्हें खाना सर्व करती हूँ' भीतर आते ही मिसेज़ रेड्डी ने कहा।

'नहीं आंटी जी, मैं अस्पताल से आकर एक दम खाना नहीं खा सकता। पहले थोड़ी देर सुस्ताऊंगा, फिर नहा कर खाना खाऊंगा' मैंने विनम्रता से कहा।

वे दोनों पति-पत्नी मेरे सामने के सोफे पर बैठ गए। वे दोनों चुप हैं। वे बोलना चाह रहे हैं, पर बोल नहीं पा रहे। उनकी खामोशी उनकी बेताबी बन रही है, जो उनके चेहरे पर साफ झलकने लगी है।

मैं भी चुप हूँ। चाहता हूँ वे पहले बोलें। हम तीनों में मौन ने अपना स्थान ग्रहण किया हुआ है। इन्हीं क्षणों में मैं सोचने लगता हूँ- अच्छा है कि यह अपार्टमेंट पूरी तरह सजा-सजाया है। वरना इस समय वे कहाँ बैठते? रियल एस्टेट एजेंट के साथ मैंने यह भी शर्त रखी थी कि अपार्टमेंट फर्निश्ड हो ताकि मुझे कुछ खरीदना न पड़े। मैं थोड़ी आर्थिक मज़बूती के बाद ही अपना सब सामान खरीदना चाहता हूँ। यह सब सोचते हुए अचानक ही मैंने रेड्डी दंपति से सवाल पूछ लिया-

'आपका बेटा कहाँ रहता है?'

यह सुन दोनों भौचक्के से रह गए! वे असहज हो गए। अरे, यह मैंने क्या किया! शायद मैंने उनकी किसी दुखती रग पर हाथ रख दिया।

'सागर मलिक यह तुमने क्या किया? पहली बार मिले हो, इतना इनफॉर्मल कैसे हो गए? बिना कुछ जाने सवाल पूछ लिया।' मैंने खुद को कोसा। अब कोसने से क्या हासिल होगा? तीर कमान से निकल चुका है। इस समय माहौल को ठीक करने की जरूरत है...

'क्षमा चाहता हूँ', अचानक प्रश्न मुंह से उछल गया। 'आपने लिखा कि मैं आपके बेटे जैसा हूँ।' मैंने झिझकते-झिझकते कहा।

रेड्डी दंपति ने लंबी श्वास ली। होंठ हिले पर बोल नहीं पाए। लगा, उनके अंदर पिघलता दर्द उन्हें बोलने नहीं दे रहा। पीड़ा आंखों से झलकने लगी। मैं शर्मिंदगी महसूस करने लगा।

'आई एम सो सॉरी। अनजाने में आपका दिल दुखा दिया।'

डॉ. रेड्डी गला साफ करते हुए धीमी आवाज में बोले, 'डू नॉट फील बैड। तुमने दिल नहीं दुखाया। वर्षों से दबी-घुटी पीड़ा बस कचोटती रहती है। हमीं उसे निकलने नहीं देते।'

मैं बोला नहीं। बस उन्हें देखता रहा... वर्षों के अनुभवों ने दोनों के चेहरों पर गहरी लकीरें खींच दी हैं। ढलता शरीर, इंतजार से टूट कर बुझी-बुझी आंखें।

'बेटा पैरिस में रहता है, फ्रांसिसी लड़की से शादी की है उसने। हम इस शादी के हक में नहीं थे। अपने संस्कारों में बंधे हम अड़े रहे और वह अपनी जिद्द पर डटा रहा। ऐसे में दूरियाँ इतनी बढ़ गईं, जिसका हमें एहसास नहीं हुआ और इस तनातनी में हमने बेटा ही खो दिया।' माँ का दर्द, आवाज और आंखों से बह निकला। 'अहम की इतनी तेज आंधी आई कि सब कुछ उड़ा कर ले गई। हम बस हाथ मलते रह गए हैं। बेटा तो हमसे बात भी नहीं करता।'

मैं उनकी ओर देख नहीं सका और उठ कर रसोई में चला आया हूँ। पानी के तीन गिलास भरे

और कॉफी टेबल पर जाकर रख दिए। मिसेज रेड्डी पानी का गिलास उठा कर पीने लगीं।

'ओह, आई एम सॉरी टू हियर दिस। एक दिन वह आपसे मिलने जरूर आएगा।' मैंने सांत्वना देते हुए कहा। मुझे दुख लगा यह सुन कर।

'उस दिन के इंतजार में तो हम बूढ़े हो गए। हमें मालूम है वह नहीं आएगा, फिर भी हम इंतजार कर रहे हैं। वह मेरा बेटा है, मेरी ही तरह अक्खड़ और जिद्दी।' इस बार डॉ. रेड्डी बोले। उनकी आवाज में मैंने उनके भीतर की टूटन महसूस की।

'सागर बेटा', मिसेज रेड्डी के मुंह से अपना नाम सुन कर मैं चौंकता हूँ पर उसी क्षण संभल जाता हूँ, इनके पड़ोस में आया हूँ, मेरा नाम जान गए होंगे और सहज होकर 'जी आंटी' कहता हूँ।

'अब तो उससे मिलने की आस ही टूट चुकी है। उसका जो नंबर हमारे पास था, वह डिस्कनेक्ट है और नया नंबर उसने अनलिस्टेड करवाया हुआ है। उसकी मर्जी के बिना ऑपरेटर हमें नंबर नहीं देगा।'

'क्या इतने वर्षों में आपकी उससे कभी बात नहीं हुई?' मैं बड़े प्यार से पूछता हूँ।

'घर छोड़ कर जब वह गया, उसका जो नंबर हमारे पास था, वह उसने डिस्कनेक्ट करवा दिया। वर्षों हमें उसकी खबर नहीं मिली। उसके दोस्तों के दरवाजे खटखटाए, किसी ने हमें नंबर नहीं दिया शायद उसने मना किया हुआ होगा। एक दोस्त हमारी हालत देख कर पिघल गया और उसने हमें उसका फोन नंबर दे दिया।' मिसेज रेड्डी अपने उमड़ रहे भावों को समेटने लगीं।

मेरा मन जिज्ञासु हो उठता है। जानना चाहता है, ऐसा क्या हो गया कि एक बेटा अपने माँ-बाप से मिलना नहीं चाहता।

मैं उत्सुकता में पूछता हूँ, 'फिर बात हुई?'

'हाँ हुई।' आवाज कुएँ से आई महसूस हुई और आंखें नम हो गईं।

'वह शुरू से ही विद्रोही स्वभाव का था। हमारा प्यार भूल चुका है, हमारी छोटी-बड़ी बातों की गांठें पाले बैठा है। न उसने माफी मांगने का समय दिया, न स्पष्टीकरण का, बस अपनी बात कह कर फोन काट दिया। अब तो उसका फोन भी नहीं मिल सकता।' आंखों की नमी बहनी शुरू हो गई। मैं कुछ पेपर नैप्किंज़ उन्हें देता हूँ। वे उनसे आंखें सोक रही हैं।

कमरे का माहौल बहुत संजीदा हो गया है।

'यहाँ अकेले रहने से भारत क्यों नहीं लौट जाते? वह तो आपका अपना देश है।' मैं फिर बेबाकी से बोल जाता हूँ।

रेड्डी दंपति के चेहरे के भाव बदल रहे हैं... अरे यह मैंने क्या कर दिया? मेरी सबसे बुरी आदत है, बेमौके, बेतुके प्रश्न कर देना। समय और हालात की नजाकत भी नहीं देखता।

अमावस्या की काली रात उनके चेहरों पर छा गई। मैं समझ गया, यह प्रश्न भी उन्हें कष्ट दे गया। नहीं चाहता वे इस प्रश्न का उत्तर दें। इन क्षणों को टालने के लिए मैं उठ कर रसोई में चला आया हूँ। खाना ठंडा नहीं हुआ, ज्यादा गर्म मैं खा नहीं सकता। प्लेट में डाल कर, उन्हीं के पास जाकर बैठ जाता हूँ।

'अरे... मैं गर्म कर देती।' आंटी जैसे नींद से जागती बोलीं।

'मैं इतना गर्म खाना ही खा सकता हूँ, जितना यह है।' मिसेज रेड्डी की मानसिक स्थिति देख कर मेरी आवाज और भी नरम हो गई, 'आपके लिए भी प्लेट बना लाऊँ, भोजन काफी है, तीनों खा सकते हैं।'

'डॉ. मलिक, उम्र के इस पड़ाव पर सूरज ढलते ही हम कुछ हल्का सा डिनर कर लेते हैं।' मिसेज रेड्डी ने उत्तर दिया। डॉ. रेड्डी के चेहरे पर अभी भी कालिमा छाई हुई है। ऐसा लग रहा है जैसे वे अतीत की ऐसी गुफा में चले गए हैं, जहाँ अंधेरा ही अंधेरा है और अब वे रोशनी में आना ही नहीं चाहते।

'मिसेज रेड्डी, आप दक्षिण भारतीय होते हुए भी हिंदी बहुत अच्छी बोलती हैं।' मैं उनके विचारों

की दिशा बदलना चाहता हूँ।

'हम दोनों के दादा और परिवार व्यवसाय के सिलसिले में कानपुर आ बसे थे। हम दोनों का जन्म कानपुर का है। इतने वर्षों से इस देश में हैं, अभी भी सोचते हिंदी में हैं। हमारे पूर्वज बेल्लरी के हैं, तेलुगु भी आती है पर अधिकतर हम हिंदी में ही बात करते हैं।' मिसेज़ रेड्डी ही उत्तर दे रही हैं। डॉ. रेड्डी उसी तरह अपने विचारों में खोए बैठे हैं। मैं उनकी सोच की तंद्रा तोड़ नहीं पाया।

एक अरसे बाद दक्षिण भारतीय स्वादिष्ट व्यंजन खाने का लुत्फ उठा रहा हूँ। खाना खाते हुए भीतर कुछ कचोट रहा है, खामख्वाह अपने प्रश्नों से मैंने रेड्डी दंपति को चोट पहुंचा दी। मैं अपने उतावलेपन पर काबू नहीं रख सकता, बचपन से मुझे माँ इस आदत के लिए टोकती थी। पर अभी तक मेरे में कोई सुधार नहीं आया। मैं कोशिश बहुत करता हूँ, पर मूलभूत प्रवृत्ति बदल नहीं पा रहा।

'डॉ. मलिक, देश की धरती में लगे पौधे को उखाड़ कर हमने विदेश की धरती में बो दिया। पहले पहल उसे बहुत मुश्किलों का सामना करना पड़ा, फिर धरती और पौधे दोनों ने एक-दूसरे को स्वीकार कर लिया।' डॉ. रेड्डी की खोई-खोई-सी आवाज कमरे के बोझिल माहौल को तोड़ती उभरी। डॉ. रेड्डी के बोलने पर मैंने राहत की सांस ली।

'जब वह पौधा वृक्ष बन गया तो हम उसे उखाड़ कर फिर पुरानी धरती में लगाने ले गए। जिन रिश्तों के लिए पौधा विदेश में वृक्ष बना, उन्हीं रिश्तों ने स्वार्थ की ऐसी आंधी चलाई कि वृक्ष के सारे पत्ते झड़ गए, टुंड-मुंड हो गया वह। पुरानी धरती और टुंड-मुंड हुए वृक्ष, दोनों ने एक-दूसरे को स्वीकार नहीं किया और रोप दिया आकर हमने विदेशी धरती पर वह वृक्ष एक बार फिर। इस धरती ने उसे पहचान लिया और सीने से लगा लिया।' यहाँ उन्होंने एक बार सांस ली। 'इस धरती ने उसका टुंड-मुंड रूप भी स्वीकार किया।' डॉ. रेड्डी के चेहरे से कालिमा हटने लगी। भावनाओं की गहरी निराशाजनक गुफा में, संवेगों को निकास का मार्ग मिल गया, वहीं से आशा की रोशनी भीतर जाने लगी। वर्षों से दबी-घुटी भावनाओं को मुझ अजनबी के सामने प्रकट कर वे अंदर तक सकून पा गए। चेहरा तो आइना है, जिसे आसानी से पढ़ा जा सकता है। उनके चेहरे की शांति मैं देख रहा हूँ। शायद आजतक वे किसी को ये बातें बता नहीं पाए। दोनों पति-पत्नी भीतर-ही-भीतर घुटते रहे। अथक प्रयास के बाद उन्होंने दिल में दबाई गांठों को खोला।

'जी भर कर हर तरह से वसूली की गई हमसे, और हम लुटते रहे, उसे प्यार समझ कर। जिन मित्रों के साथ जीवन के 40 साल गुजारे, अपना दुख-सुख बांटा, अब उन्हीं में वापिस लौट आए।' कह कर डॉ. रेड्डी खड़े हो गए।

'जो कभी विदेश था, अब अपना लगने लगा है। डॉ. मलिक, जीवन की लंबी यात्रा में दिल के रिश्ते ही काम आते हैं, उन्हें संभाल कर रखना।' कहते हुए वे दरवाजे की ओर बढ़े और साथ ही मिसेज रेड्डी भी खड़ी हो गईं और डॉ.रेड्डी के साथ हो लीं। मैंने उन दोनों से हाथ मिलाते हुए कहा, 'मेरे माँ-पिता तो भारत में हैं। यहाँ आप ही हैं मेरे अपने। जब भी मन चाहे, बेटे के घर चले आएँ।' मैं आगे कुछ भी बोल नहीं पा रहा। उनके बाहर जाते ही मैं दरवाजा बंद करता हूँ।

मेरी आंखों के मोती जो मैंने अपनी आंखों में ही सोख लिए थे, मेरी हथेलियों पर आ गिरे। मैं जीवन में पहली बार इतना भावुक हुआ हूँ। मुझे अपना भविष्य दिखाई देने लगा... रिश्ते ही नहीं, यह देश क्या कम वसूल करता है... सहारे को तलाशती मेरी आंखें भी एक दिन इस देश की किसी खिड़की से झांकती हुईं, किसी की पीठ से चिपक जाएंगीं...।

101 Guymon Ct., Morissville, North Carolina-27560, USA
email : sudhadrishti@gmail.com